Chapter-2

अध्याय दो

गुजरात में हिन्दी काव्य-परम्परा का प्रारम्भ

गुजरात में हिन्दी-प्रसार में योगदान देने वाले विशिष्ट व्यक्तियों का अवदान

गुजराती और हिन्दी भाषा का पारस्परिक नैकट्य

हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

गुजरात के अपभ्रंशकालीन साहित्य से उत्तरोत्तर विकसित हिन्दी काव्य-परम्परा

गुजरात में हिन्दी-काव्य-परम्परा का प्रारंभ

हिन्दी-साहित्य-सृजन के लिए गुजरात की धरती बड़ी ही ऊर्वरा रही है। मध्यकाल से लेकर अब तक यहाँ अनेक वरिष्ठ कवियों के प्रदान समग्र देश में चर्चित रहे है। शैव, शाक्त और वैष्णव धर्मावलम्बियों की विभिन्न शाखाएँ यहाँ पल्लवित एवं पुष्पित होती रही है जिसके कारण यहाँ विभिन्न मतवादी धर्म सम्प्रदाय के अनुयायियों का आना -जाना लगा ही रहा है। महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि से इसकी सीमाएँ जुड़ी है जिससे विभिन्न संस्कृतियों का सन्निवेश इस धरती पर हुआ है। ईसा की दसवीं शताब्दी से भी पूर्व यहाँ विभिन्न भाषा-भाषियों की अच्छी-खासी संख्या रही है।

गुजरात में हिन्दी साहित्य के लेखन की आधिकारिक जानकारी 11वीं या 12वीं शताब्दी से प्राप्त होती है। 12 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध जैनाचार्य मुनि हेमचन्द्राचार्य ने अपने व्याकरण ग्रंथ में जिन दोहों का संग्रह किया है उनसे स्पष्ट होता है कि गुजरात में 12वीं शताब्दी से पूर्व ही हिन्दी लेखन का क्रम विकसित हो चुका था। डॉ0 शंभुनाथ पाण्डे, डॉ0 हरीश शुक्ल, डॉ0 सुमन राजे, डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त, डॉ0 रमणलाल पाठक आदि विद्वानों ने विभिन्न स्रोतों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि जैन कवियों के द्वारा रचे साहित्य में हिन्दी भाषा के उद्भव एवं विकास के बीज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे।

अतः बारहवीं शताब्दी के गुजरात के जैन कवि शालिभद्रसूरि विरचित 'भरतेश्वर बाहुबलिरास' हिन्दी को प्रथम काव्य-ग्रंथ माना गया है। 12वीं से 13वीं शताब्दी के काल खण्ड को हिन्दी-उद्भव एवं विकास के सन्दर्भ में गुजरात का यह प्रथम अध्याय था जिसे हम गुजरात के हिन्दी साहित्य का आदिकाल कह सकते हैं। नरसिंह महेता (19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध) से लेकर दयाराम (12वीं शताब्दी का उतरार्द्ध) तक के कालखण्ड को गुजरात के हिन्दी काव्य-सृजन एवं उसके प्रचार-प्रसार का मध्यकाल कह सकते है। गुजरात के सूरत जिले के नर्मदाशंकर मेहता (19वीं शताब्दी का उतरार्द्ध) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन रहे हैं। इनसे हम गुजरात के आधुनिक काल का प्रारंभ मान सकते हैं।

आधुनिक गुजरात के हिन्दी साहित्यकार सृजनात्मक एवं समीक्षात्मक दोनों ही क्षेत्रों में रचनाप्रवृत है। इनका लेखन स्तरीय एवं श्रेष्ठ रहा है। इनमें से बहुत से लेखक या कवि दूर-दूरांत अन्य प्रान्तों से आकर यहाँ बसे है और जो पीढ़ियों से यहाँ रह कर गुजरात की संस्कृति में समाविष्ट हो चुके है। इस प्रकार के रचनाकारों में मूल हिन्दी भाषी क्षेत्रों से आए हुए ऐसे अनेक परिवार है, जिनके घर में आज भी हिन्दी का या हिन्दी की आंचलिक बोलियों का सतत व्यवहार होता रहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में सामाजिक चेतना

के साथ-साथ संवेदना और सम्प्रेषण के स्तर पर भी कविता को एक सुष्ठु रूप प्रदान किया गया है। गुजरात के समकालीन हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट और गंभीर अध्ययन प्रस्तुत करने वाले समालोचक साहित्यकारों में डॉ0 अंबाशंकर नागर, डॉ0 किशोर काबरा, डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त, डॉ विष्णु विराट, श्री रघुनाथ भट्ट आदि विद्वानों का प्रदान उल्लेखनीय रहा है। उनका रचनात्मक योगदान गुजरात के अहिन्दी भाषी साहित्यकारों की हिन्दी साहित्य-सेवा के सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। सम्प्रति हिन्दी की श्रेष्ठ रचनाओं का सृजन करने वालों में कुंज बिहारी वार्ष्णेय, किशोर काबरा, रमाकांत शर्मा, वंशीधर शर्मा, भगवानदास जैन, घनश्याम अग्रवाल, रघुनाथ भट्ट, राम कुमार गुप्त, द्वारका प्रसाद सांचीहर, वसन्त परिहार, शेखर जैन, विष्णु विराट, रामचेत शर्मा, शिव कुमार मिश्र आदि अनेक साहित्य सर्जक उल्लेखनीय हैं। अपनी-अपनी विशिष्ट विधाओं में इनके नाम चर्चित हैं। इन साहित्यकारों के अनेक ग्रंथ प्रकाशित है तथा इनके विशिष्ट साहित्यिक प्रदान को नकारा नहीं जा सकता।

प्रस्तुत अध्याय में हम गुजरात की वरिष्ठ परम्परा का अवलोकन करते हुए अधुनातम तथा समकालीन साहित्य-सृजन की युग धर्मिता से जुड़ कर गुजरात के हिन्दी साहित्य का समग्र विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट उल्लेखनीय व्यक्तियों की चर्चा करना यहाँ समीचीन है जिनके साहित्यिक अवदान एवं हिन्दी प्रेम ने गुजरात को गौरव प्रदान किया है।

<u>महर्षि दयानन्द सरस्वती (1824-1883)</u>

उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारंभ हिन्दी के विकास के लिए शुभ संकेत बनकर आया। भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक क्रांति के द्वारा हिंदी को एक नई शक्ति प्राप्त हुई। आर्यसमाज की इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी गद्य के व्यवस्थित विकास में आर्यसमाज का योगदान सभी सुधी विद्वानों द्वारा पुष्ट किया जा चुका है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती एक व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। उन्होंने आर्यसमाज के प्रचार का माध्यम हिन्दी को ही स्वीकार किया क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि इस देश में हिन्दी एक भाषा ही नहीं बल्कि एक विचार भी है, एक संस्कृति है तथा भारतीय मनीषा में प्रतिस्थापित एक संवेद्य भावना भी है। यदि सामाजिक क्रांति का बिगुल बजाना ही है तो राष्ट्रीयता की पावनधारा के साथ हिन्दी का सशक्त माध्यम ग्रहण करना नितांत अपेक्षित ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है। हिन्दी के चतुर्दिक हो रहे विकास और उसकी स्वस्थ गति को देखकर ही महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी भाषा में अपनी बात कहना अधिक

समीचीन समझा। इससे वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं में अपने मन्तव्य का सेतु स्थापित कर सकने में सफल हो सके। उन्होंने प्रारंभ में स्वयं हिन्दी भाषा में अधिकार प्राप्त किया और बाद में यहाँ तक घोषणा कर दी कि प्रत्येक आर्यसमाजी के लिए हिन्दी भाषा का ज्ञान अनिवार्य है। यह हिन्दी किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष की भाषा न होकर हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि सबकी भाषा है। यह आर्यावर्त समस्त के लिए एक विचार-सेतु है। उन्होंने यह निर्णय भी शीघ्र ले लिया कि आर्य समाज का समस्त साहित्य हिन्दी में भी प्रकाशित किया जाएगा, इस संकल्प से हिंदी को बड़ा बल मिला था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी और वह अंग्रेजी तो नहीं के बराबर ही जानते थे। हिन्दी के बल पर ही वह भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों की सफल यात्राएँ कर सके और अपने विचारों का सर्वत्र प्रसारित कर सके। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में भी उन्होंने अपने भाषण हिन्दी में ही देकर विशाल जन में दिनी को सम्बोधित किया था। उन्होंने हिन्दी में अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे तथा अनेक हिन्दी पत्रिकाओं का प्रकाशन भी उन्होंने प्रारंभ किया। उन्होंने अपने सभी लेखादि हिन्दी में ही लिखे। जिससे हिन्दी को लोकप्रियता प्राप्त हुई और सामान्य लोगों को उनके विचार समझने में सुविधा हुई। प्रान्तीय-जातीय भेद तथा अन्य सभी सीमाओं को लाँघकर जहाँ-जहाँ आर्यसमाज की स्थापना हुई वहाँ-वहाँ हिन्दी का समुचित प्रसार भी हुआ। लोगों के हृदय में हिन्दी के प्रति स्नेह ही पैदा हुआ।

इन सब का ज्वलन्त उदाहरण पंजाब है। जैसे पंजाब में आर्यसमाज का वर्चस्व स्थापित हुआ अन्य जातियों और सम्प्रदायों के विरोधों तथा सरकारी उपेक्षा के बावजूद भी हिन्दी की अमरबेल वहाँ लहराई फिर धीरे-धीरे समस्त पंजाब प्रान्त में आच्छादित हो गई।

अपने ग्रंथ ***'संस्कार विधि'*** में महर्षि दयानन्द ने सोलह वैदिक संस्कारों की पूर्ण व्याख्या की है। उनकी भाषा से यह स्पष्ट आभासित हो जाता है कि लेखक अहिन्दीभाषी है। वह संस्कृत का उद्भट विद्वान है और बोलचाल की हिंदी से उसका विशेष परिचय नहीं है। इसकी चिन्ता न करके वह हिन्दी को अपने व्यवहार का माध्यम बनाए रहे। आगे चलकर संसार प्रसिद्ध अपने महान ग्रंथ ***'सत्यार्थप्रकाश'*** की रचना उन्होंने मूलरूप से हिन्दी में की। 'सत्यार्थप्रकाश' स्वामी दयानन्द का सुमेरु ग्रंथ है। उसमें कोई भी ऐसा विषय नहीं जिसपर उन्होंने प्रकाश न डाला हो। उनकी मातृभाषा गुजराती होने के कारण गुजराती, संस्कृत अध्ययन के कारण संस्कृत और कार्यक्षेत्र ब्रज होने के कारण ब्रजभाषा, इन तीन भाषा शैलियों का सम्मिश्रित रूप 'सत्यार्थ-प्रकाश' में देखा जा सकता है। इससे ज्ञात होता है कि

दयानन्द में समन्वयात्मक दृष्टि थी। अपने इसी औदार्यभाव को प्रकाशित करने के लिए उन्होंने समर्थ माध्यम के रूप में हिन्दी को अपनाया। हिन्दी उनके उद्देश्यों की पूर्ति का एक सशक्त उपकरण थी। उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ जनजागृति के आह्वान हेतु हिंदी को अपनाकर उसकी उन्नति के द्वार का उद्घाटन किया। वह हिंदी को आर्य भाषा कहते थे और उसे देशव्यापी बनाने का स्वप्न देखते थे। एकबार उनके एक पंजाबी अनुयायी ने उनके समस्त ग्रन्थों का अनुवाद पंजाबी में करने की आज्ञा मांगी तो उन्होंने स्पष्ट कहा था-

"भाई, मेरी आँखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय लोग एक भाषा को समझने और बोलने लग जाएँगे, जिन्हें मेरे अभिप्रायों को जानने की समझने की सचमुच इच्छा होगी वे इस आर्यभाषा को सीखने अपना कर्त्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।"

<u>महाराजा सयाजीराव (तृतीय) गायकवाड</u>

सन 1889 से सन् 1913 तक का 25 वर्षों का समय उद्दाम राष्ट्रीय चेतना के उन्नयन की दृष्टि से भारतीय इतिहास में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ (तृतीय) भारत की स्वतंत्रता की उत्कट कामना करने वाले एक अप्रतिम शासक थे। उनका यह दृढ़ मत था कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए देश की सामान्य जनता का शिक्षित होना नितांत आवश्यक है, अत: उन्होंने छोटे-से देशीय राज्य के सात से बारह वर्ष के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी थी। आपका यह भी पक्का विश्वास था कि देश की जनता को सम्पर्कसूत्र के लिए एक ही भाषा के प्रति निष्ठापूर्वक जुड़ना नितान्त आवश्यक है। वह हिन्दी को भारतीय एकता की भाषा मानते थे। अत: वे मूलरूप से मराठीभाषी होने पर तथा अंग्रेजी भाषा के परमज्ञाता होने पर भी देश की जागृति तथा राजकीय स्वतंत्रता के लिए हिंदी को ही वह व्यवहारिक और बोलचाल की भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने के प्रबल समर्थक थे। इसी दूरदर्शिता से उन्होंने गुजरात में अपने गायकवाड़ी शासन में सन 1928 से पाँचवी कक्षा से हिंदी को एक अनिवार्य विषय के रूप में स्थान देकर तत्कालीन भारत में राष्ट्रीय चेतना से जुड़ने का एक रचनात्मक कदम उठाया था। इस हेतु की संसिद्धि के लिए उन्होंने 'हिंदी भाषा चन्द्रिका' भाग-2 प्रकाशित कराई थी। उन्होंने 1932 में ***'श्रीसयाजी शासन कल्पतरू'*** नामक एक कोश तैयार कराया था जिसकी रचना के पीछे हिंदी के लिए समग्र देश में एक स्वस्थ वातावरण तैयार करना ही था। प्रस्तुत कोश में अंग्रेजी शब्दों के समानार्थी गुजराती, मराठी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, बंगाली के

साथ-साथ हिन्दी शब्द विशेष रूप से दिए गए थे। इतना ही नहीं, तत्कालीन गुजरात की 25 लाख जनता के आपसी व्यवहार के लिए तथा राजकीय नौकरी प्राप्त करने के लिए सन् 1933 से हिन्दी को अनिवार्य कर दिया था। हर व्यक्ति को हिंदी का ज्ञान होना ही चाहिये, इसके लिए उन्होंने अनेक रचनात्मक कदम उठाये थे।

हिंदी साहित्य मंडल हो या मराठी साहित्य मंडल, संस्कृत विद्यापीठ हो या प्राच्य विद्यापीठ, जहाँ कहीं वह जाते, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वह हिंदी को समस्त राष्ट्र की एक भाषा के रूप में तथा एक लिपि के रूप में देवनागरी के प्रयोग की हिमायत अवश्य करते थे। चाहे वह बड़ौदा लिटररी कॉन्फ्रेन्स के अध्यक्ष हों, चाहे अन्य किसी आयोजन में मुख्य अतिथि हों, वह हिंदी के प्रचार एवं प्रसार को अवश्य व्यक्त करते थे। 10 जनवरी सन् 1930 को बम्बई में सम्पन्न ग्रंथ प्रकाशन मंडल की सिल्वर जुबली के समारोह के अवसर पर अपने वक्तव्य में बल देकर उन्होंने कहा, ***"यह आवश्यक है कि हमारे देश में राष्ट्रीयता और एकता की भावना के विकास हेतु एक सामान्य भाषा के रूप में हिंदी होनी चाहिये।"***

देशोद्धारिक, समाज सुधारक, स्त्री-शिक्षा के पुरस्कर्ता, भारतीय संस्कृति के उन्नायक, उत्कट विद्याव्यसनी, साहित्य-प्रेमी, सारस्वत तथा राष्ट्रीय एकता के प्रखर हामी होने के कारण उनको बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में मनोनीत किया गया था। 19 जनवरी सन् 1924 में सम्पन्न अपने दीक्षान्त समारोह में आपके द्वारा प्रदत्त भाषण अत्यन्त विद्वतापूर्ण और हिन्दी के समर्थन में था। उन्होंने बनारस विश्वविद्यालय और शान्ति निकेतन दोनों संस्थाओं को बड़े-बड़े आर्थिक अनुदान भी प्रदान किये थे। 30-04-1949 में स्थापित महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के प्रथम कुलाधिपति महाराजा प्रताप सिंह गायकवाड़ ने अपने पितामह के राष्ट्रप्रेम के निदर्शन के रूप में 'द सयाजीराव चेयर ऑफ इंडियन कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन' के स्थापना के लिए इक्कीस हजार रुपयों की धनराशि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को अनुदान के रूप में प्रदान की थी।

महात्मागाँधी की भाँति महाराजा भी हिंदी के सरलीकृत और साधारण रूप के पक्षपाती थे। उनका मत था कि हिन्दी की शब्दावली संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी हुई न होकर ऐसी हो जिससे उर्दू जानने वाले भी इसे सहज रूप से जान सकें और व्यवहार में ला सकें। सन् 1933 में इन्होंने लंदन के सर फान्सिस यंग हसबंड को पत्र में लिखा था कि ***"उर्दू शब्दों वाली और देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा भारत में सर्वसामान्य भाषा होनी चाहिये। और आवश्यकता है कि सरकार***

अनिवार्य रूप से उसका प्रयोग करायें।'' अर्थात वह हिन्दी को न तो संस्कृतनिष्ठ बनाने के पक्षपाती थे और न हिन्दी में अरबी-फारसी शब्दों के सम्मिलित करने के विरोधी थे। इसी सरल हिन्दी के प्रति उनके प्रेम के कारण उनको 25 मार्च, 1934 में देहली में सम्पन्न हुए हिन्दी साहित्य-सम्मलेन के तेईसवें अधिवेशन में अध्यक्ष के रूप में उन्हें मनोनीत किया गया था। उस अधिवेशन में उनका प्रथम वाक्य यही था।

''राष्ट्रीय ऐक्य संसिद्धि, करने की साम्प्रत परिस्थितियों को देखते हुए भारत को एक सामान्य भाषा की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके लिए कोई दलील करने की आवश्यकता नहीं है कि वह भाषा हिन्दी ही है।'' उनका पक्का अभिमत था कि एकमात्र हिन्दी को स्वीकार लेने से भाषा सम्बन्धी मतभेदों और झगड़ों से हम मुक्त हो सकते हैं। जिस हिन्दी में कबीर, सूर और तुलसीदास ने अपने काव्य प्रस्तुत किये हैं, उसे हमारे साहित्य का माध्यम बनना चाहिये।

वह भलीभाँति यह भी समझते थे कि यदि राजा को अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण रूपेण चरितार्थ करना हो तो उसे प्रजा की संस्कृति के साथ एकरूप होकर प्रजा की भाषा के रूप में ही बोलना चाहिये, उन्हीं की भाषा में सोचना और विचारना चाहिये; इतना ही नहीं, उसे स्वप्न तक प्रजा की ही भाषा में आने चाहिये। उनके हिन्दी-प्रेम की भावना को चरितार्थ करने के लिए वडोदरा विश्वविद्यालय की विनियन शाखा के साथ-साथ वाणिज्य और विज्ञान शाखा में भी हिन्दी को अनिवार्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया था। आज तक विनयन शाखा में बी. ए. प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

बड़ौदा विश्वविद्यालय को 'टीचिंग एण्ड रेसीडेन्सीयल' बनाने के पीछे मुझे लगता है कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के 'रेसीडेन्सीयल रूप' का ही आदर्श रहा होगा। दयानन्द सरस्वती संस्थापित गुरुकुल और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में 1929 में दीक्षान्त प्रवचन करते हुए महाराजा ने उस विश्वविद्यालय के टीचिंग एण्ड रेसीडेन्सीयल रूप की बहुत प्रशंसा की थी। उनका दृढ़ अभिमत था कि किसी भी विश्वविद्यालय के 'टीचिंग एण्ड रेसीडेन्सियल' होने के द्वारा ही प्राचीन आश्रमी परम्परा के तथा शिक्षा के धर्म और जाति-निरपेक्ष बने रहने के आदर्श को चरितार्थ किया जा सकता है। स्थानीय छात्रावासीय विश्वविद्यालय ही भिन्न-भिन्न धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों वाले देश में नागरिकों को राष्ट्रीय ऐक्य के सूत्र में पिरोने का सच्चा माध्यम बन सकता है।

महात्मागाँधी

महात्मागाँधी का सर्वतोन्मुखी व्यक्तित्व जितना विराट था, उतना ही व्यापक

प्रभावशाली था उनके सोचने का ढंग। अखिल भारत की प्रान्तीय भाषाओं और उनके साहित्य के साथ हिंदी साहित्य पर भी उनका गहरा असर पड़ा था। भारतीय मुक्ति आन्दोलन के समय राष्ट्र को एक करने वाली भाषा की समस्या पर उनके विचार स्पष्ट थे। शिक्षितवर्ग उनसे परिचित हुआ और हिंदी साहित्य-सम्मेलन का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ। अत: सन् 1918 में वह सम्मेलन के सभापति बने। उन्होंने दक्षिण में हिन्दी-प्रचार की योजना बनाई और शिक्षकों के प्रथम दल के साथ अपने पुत्र देवदास गाँधी को हिंदी प्रचारार्थ दक्षिण भारत भेजा। दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का कार्य सन् 1918 से 1927 तक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की ओर से गाँधी जी के संरक्षण में होता रहा। उन्होंने हिन्दी के समस्त कार्य की देखरेख के लिए अलग से हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना की, जिनका नाम सन् 1937 में ***'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'*** रखा गया। गाँधीजी के कार्यक्रम में हिंदी-प्रचार का यह सबसे बड़ा तथा सफल प्रयास था। उन्होंने हिन्दी को सदा राष्ट्रीय एकता का प्रतीक ही माना था। गाँधीजी के स्वदेशाभिमान का आधार भी हिंदी ही था। वह हमेशा यही कहते थे कि ***''स्वदेशाभिमान को स्थिर रखने के लिए हमें हिन्दी सीखना आवश्यक है।''***

सन् 1911 में उन्होंने ***'हिन्दू स्वराज्य'*** में लिखा, ***''हर एक पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का -हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमानों को अरबी का, पारसियों को परसियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिये।''*** अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है- ***''मैं यह मानता हूँ कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षण क्रम में मातृभाषा के साथ अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए भी स्थान होना चाहिये।''*** उन्होंने स्वयं हिन्दी सीखी और धीरे-धीरे हिंदी भाषी लोगों से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। फिर सार्वजनिक सभाओं में और मंचों पर तथा कांग्रेस की परिषदों में भी वह हिन्दी के महत्त्व पर जोर देने लगे।

सन् 1935 में जब वह अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के सभापति बने, तब उन्होंने कहा, ***''हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं, यह राष्ट्रीय भाषा होने के लायक भी है। यही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे यहाँ सर्वाधिक लोग जानते व बोलते हैं। ऐसी एकमात्र भाषा हिन्दी ही है।''*** हिन्दी को विशुद्ध साहित्य की परिधि से निकालकर राजनीति के मंच पर स्थापित करना तथा उसे किसानों के लिए भी सुलभ करना गाँधीजी के महत्वपूर्ण कार्य है।

गाँधी जी ने राष्ट्रीय ऐक्य संसाधना में हिन्दी की अनेक प्रवृत्तियों का आयोजन किया था।

(1) देश में सर्वत्र हिन्दी भाषा के प्रचार एवं प्रसार का निष्ठापूर्वक कार्य करने वाली अनेक संस्थाओं की उन्होंने स्थापना की। सन् 1863 को काशी में 'नागरी प्रचारिणी सभा', 1910 में प्रयाग में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', 1918 में 'दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा' मद्रास, 1920 में 'गुजरात विद्यापीठ' अहमदाबाद आदि की स्थापना में उन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में महती योगदान दिया था।

(2) हिन्दी भाषा तथा साहित्य की परीक्षाओं का आयोजन करने वाली संस्थाओं में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के अन्तर्गत 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' वर्धा की स्थापना 1936 में हुई, इसका प्रमुख कार्यक्षेत्र गुजरात रहा है। इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य परिषद आदि के वार्षिक सम्मेलनों में अध्यक्ष पद से आपने हिन्दी के राष्ट्रीय महत्त्व की घोषणा की है।

(3) हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के जन्मदाता और प्रोत्साहक के रूप में भी गाँधीजी का योगदान अनुकरणीय रहा है। गुजरात में ***'नवजीवन', 'हिन्दू स्वराज', 'यंग इन्डिया', 'हरिजन'*** आदि पत्रिकाओं का प्रारम्भ करने के उपरान्त वह बनारस से निकलने वाले ***'हंस'*** तथा बिहार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पत्रिकाओं के संरक्षक भी रहे हैं।

(4) जब कभी वह साहित्यकारों, राजनेताओं, विद्यापीठ के छात्रों, स्त्रियों, हरिजनों तथा समाज-सेवियों के मध्य जाते तब राष्ट्रभाषा के रूप में 'हिन्दुस्तानी' की चर्चा कर उसका प्रयोग करने पर अवश्य ही जोर देते थे।

गाँधी जी का समस्त जीवन एक खुली किताब के समान था। जैसी रहनी वैसी करनी, का सम्यक् निदर्शन था उनका जीवन। अतः वह हिन्दी का प्रचार केवल वक्तव्यों के द्वारा ही नहीं अपितु सरल और सादी हिन्दुस्तानी में स्वयं नियमित रूप से लिखकर भी करते थे।

महात्मा गाँधी के राष्ट्रव्यापी हिन्दी-सेवा के महान कार्यों को चिरंजीव बनाने एवं किसी भी सन्निष्ठ हिन्दी सेवक को प्रेरणा देने हेतु 'अखिल भारतीय महात्मा गाँधी पुरस्कार' की योजना बनाई गई। इस योजना के अन्तर्गत अहिन्दी भाषी प्रदेश के किसी भी साहित्यकार को पुरस्कार प्रदान कर उसके हिन्दी-सेवा-कार्यों की सराहना आज भी की जाती है।

काकासाहब कालेलकर

काकासाहिब कालेलकर के नाम से सारे राष्ट्र में प्रख्याति प्राप्त दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर का जन्म 1 दिसम्बर 1885 को सतारा में हुआ था। वह मराठी भाषी थे। स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से तथा श्री अरविंद के 'कर्म योगीन' पत्र के नियमित वाचन से इनके

मन में यह धारणा दृढ़ हो गई थी कि देशोद्धार और राष्ट्रीय ऐक्य का संपादन शिक्षण के द्वारा ही अच्छी तरह से किया जा सकता है। अत: बडोदरा जिले में नर्मदा तटस्थ वर्तमान गंगनाथ नामक स्थान में अंग्रेजों की वैमनस्यता से बचने के लिए गुप्तरूप से चलने वाली शिक्षणसंस्था 'भारती विद्यालय' का आचार्यपद ग्रहण कर उन्होंने अपने राष्ट्रीय शिक्षक का जीवन प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् क्रमश: गुरुकुल कांगड़ी, शान्ति निकेतन तथा गुजरात विद्यापीठ में एक सन्निष्ठ अध्यापक के रूप में वह कार्य करते रहे। 1917 में महात्मा गाँधी के आश्रम अहमदाबाद में बस जाने के पश्चात् वह गाँधी जी के साथ उनके एक सन्निष्ठ अंत: वासी के रूप में हिन्दी भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय स्वतंत्रता और ऐक्य की स्थापना में अनेक विध महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे।

राष्ट्रीय ऐक्य को सम्पादित करने के एक अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण साधन के रूप में महात्मा गाँधी द्वारा हिन्दुस्तानी के स्वीकार्य और उसके प्रचार-प्रसार में मिसनरी भावना से जिन राष्ट्रभक्त अहिन्दी भाषी सेवकों ने विशेष दिलचस्पी ली और अपना समय अधिकतर इसी काम को दिया, उनमें गिरिराज किशोरजी के पश्चात् काकासाहब का ही नाम आता है। उन्होंने हिन्दुस्तानी के प्रचार को राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत माना था। दक्षिण भारत की हिन्दी प्रचार सभा के अधिवेशन में (सन् 1938) भाषण देते हुए उन्होंने कहा था- ***"हमारा राष्ट्रभाषा प्रचार एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है।"***

दयानन्द सरस्वती तथा गाँधी जी की तरह इन्होंने भी पहले स्वयं हिन्दी सीखी और फिर कई वर्ष तक दक्षिण भारत में सम्मेलन की ओर से प्रचार-कार्य किया। हिन्दी के प्रचार-कार्य में जहाँ इन्हें कोई दोष दिखाई देते अथवा किन्हीं कारणों से उसकी प्रगति रुक जाती तब गाँधी जी उनको जाँच के लिए वहाँ भेजते। इस प्रकार के नाजुक कार्य काकासाहब ने सदा सफलता से किये। इसीलिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना के बाद गुजरात में हिन्दी-प्रचार की व्यवस्था के लिए गाँधीजी ने काका कालेलकर को चुना। वह हिन्दी के सहज और सरल रूप के हामी थे। उनका दृढ़ मत था कि हिन्दुस्तान के अनेक पंथों के साधुओं के सामने सारे राष्ट्र में घूमते वक्त भाषा का प्रश्न आता ही नहीं है। साधु चाहे बंगाल का हो, या मद्रास का किन्तु वह हिन्दी में ही बोलता है। चारों धामों के यात्रियों का भी अनुभव है कि भाषा के रूप में हिन्दी को सब अत्यन्त आसानी के समझ सकते है। कैलाश से रामेश्वर तक तथा द्वारका से कामाख्या तक सर्वत्र हिन्दी से ही काम चलता है। इनका यह भी कहना है कि ***"हिन्दी भाषा में विषय वैविध्य से भरा विपुल वाङ्मय है। चाहे सृष्टि वर्णन करने वाली कविता लीजिये या वीर, करुण,***

भक्तिरस की, कोई भी रस लीजिये, दुनियाँ की किसी भी भाषा की तुलना में हिन्दी कभी पीछे नहीं है। जिस भाषा में कबीर ने एकेश्वरी भक्तिमार्ग का प्रतिवादन किया, जिस भाषा में तुलसीदास ने रामायण की रचना की, जिस भाषा में गोपियों के कृष्णप्रेम की अभिव्यक्ति हुई, जिस भाषा में "विचार सागर "सरीखे वेदान्त रत्नग्रंथ निर्मित हुए, जिस भाषा में सूरदास का कविता सागर उद्वेलित हो रहा है, और जिस भाषा में भूषण कवि ने गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक शिवाजी के प्रताप का वर्णन किया है वह भाषा परम प्रौढ़ भाषा है।" अत: उन्होंने हिन्दी को सभी धर्मो, सम्प्रदायों और संस्कृतियों को आसेतु हिमालय फैलाने के लिए एक महती साधन के रूप में उसे स्वीकार किया। वह राष्ट्रभाषा को न तो संस्कृत के तत्सम अथवा न तो अरबी-फारसी शब्दों से लादकर भार रूप बनाना चाहते थे। वह यह भी नही चाहते थे कि हिन्दी-अंग्रेजी विद्वानों को प्रसन्न करने वाली अंग्रेजी शब्दावली से लदी हो। राष्ट्रभाषा तो देश के बड़े भूभाग की जनता जिसको अच्छी तरह से समझ सके ऐसी सरल और सीधी-सादी होनी चाहिये। हिन्दी भाषा में जो शब्द दुग्ध-शर्करावत् एकरूप हो जाएँ और जिसको आम जनता सरलता से समझ सकती हो ऐसे सभी शब्दों से राष्ट्रभाषा-भंडार समृद्ध होना चाहिये।

काकाकालेलकर उच्च कोटि के विचारक और विद्वान थे। उनका योगदान हिन्दी भाषा के प्रचार तक ही सीमित नहीं है। उनकी अपनी मौलिक रचनाओं से हिन्दी साहित्य अवश्य ही समृद्ध हुआ है। मूलरूप से चिंतक और साहित्यकार होने के कारण उनकी अभिव्यक्ति की अपनी शैली है, जिसे वह हिन्दी, गुजराती, मराठी और बंगला में सामान्यरूप से प्रयोग करते हैं। उनकी हिन्दी शैली में एक प्रकार की चमक और व्यग्रता है जो पाठक को आकर्षित करती है। उनकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है, इसलिए उनकी लेखनी से प्राय: ऐसे चित्र बन पड़ते हैं जो मौलिक होने के साथ नित्य नये दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। उनकी भाषा और शैली बड़ी सजीव और प्रभावशाली है।

काकासाहब की लगभग चालीस से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिसमें से अधिकांश का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इनमें से कम से कम पांच छ: पुस्तकें तो स्वयं उन्होंने ही मूलरूप से हिन्दी में लिखी हैं। यहाँ इस बात का भी उल्लेख उपयुक्त होगा कि दो-चार को छोड़, बाकी ग्रंथों का अनुवाद स्वयं काकासाहब ने ही किया है, अत: मौलिक हो या अनूदित वह काकासाहब की भाषा-शैली का ही परिचायक है।

कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी : (ई0 सन् 187-1971)

अपने विद्यार्थी जीवन के दौरान कन्हैयालाल मुंशी तत्कालीन बड़ौदा कॉलेज के तेजस्वी अध्यापक प्रो0 अरविन्द घोष के सम्पर्क में आए। इसके परिणामस्वरूप के0 एम0 मुंशी में राष्ट्रीय एकता एवं भारतीय अस्मिता के संस्कार जागृत हो उठे और तभी से अनवरत रूप से वे राष्ट्रीय एकता एवं भारतीय अस्मिता की जागृति एवं संस्थापना में विभिन्न रूपों में कार्य करते रहे। मुंशीजी गुजराती और अंग्रेजी भाषा के उच्चकोटि के साहित्यसर्जक होते हुए भी हिन्दी के महान समर्थक एवं प्रेमी थे। अंग्रेजी भाषा में प्रवीण मुंशीजी की यह धारणा थी कि हिन्दी की भाव-सम्प्रेषणीयता अंग्रेजी से अधिक है। वे गठीली और परिष्कृत संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के प्रबल समर्थक थे।

जीवनभर वकील, मंत्री, राज्यपाल और एक अत्यंत व्यस्त राजनीतिज्ञ होते हुए भी मुंशीजी ने 50 से भी अधिक ग्रंथों की रचना की थी। ये ग्रंथ अधिकतर गुजराती में हैं, कुछ अंग्रेजी में भी हैं। इनमें उपन्यास, कहानी, नाटक, इतिहास, ललित निबंध आदि सम्मिलित हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात के साहित्यकारों में गाँधीजी को छोड़कर शायद मुंशीजी ही एक मात्र ऐसे रचनाकार हैं जिनके प्राय: सभी ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद सम्पन्न हो चुका है।

आधुनिक हिन्दी नाटकों के सर्वश्रेष्ठ सर्जक जयशंकर प्रसाद की भाँति मुंशी जी ने भी अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। इस संदर्भ में प्रसादजी प्रणीत 'ध्रुवस्वामिनी' एवं मुंशी जी सृजित 'ध्रुवस्वामिनीदेवी' नाटकों की तुलनात्मक अर्थवत्ता की दृष्टि से दोनों के नाटकों पर तुलनात्मक शोधकार्य किया गया है। यह मुंशीजी की रचनात्मक प्रतिभा का सम्मान है।

भारतीय भाषाएँ एक दूसरे के इतनी निकट हैं कि किसी भी भाषा के महान लेखक की कृतियों का अन्य भाषा के साहित्य पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मुंशीजी की साहित्यिक रचनाओं का परोक्ष रूप से हिन्दी पर प्रभाव पड़ा है और इन रचनाओं के हिन्दी अनुवाद से यह प्रभाव प्रत्यक्ष हो गया है। इनके ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक कथाओं पर आधारित रचनाएँ हिन्दी में इतनी अधिक लोकप्रिय हुई हैं मानो मूलरूप से वे हिन्दी में ही लिखी गई हो इसी कारण मुंशीजी की गणना देश के महान साहित्यकारों में होती है और इनका नाम शरदचन्द्र, बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ लिया जाता है। और यही कारण है कि भारत सरकार की ओर से मुंशी शताब्दी समारोह मनाकर इस वरिष्ठ साहित्यकार को राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया गया।

हिन्दी के लिए उनके हृदय में सदा सम्मान की भावना रही है उन्होंने इसका प्रमाण भी दिया है। डा0 सम्पूर्णानन्द के शब्दों में ***''हिन्दी उनको अपने प्रबल और अविकम्प्य समर्थक के रूप में जानती है।''*** मुंशीजी की यह धारणा रही है कि विद्याशाखा की कोई भी संस्था वास्तविक अर्थ में तब तक भारतीय नहीं कही जा सकती, जब तक कि उसमें हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का प्रबंध न हो। महात्मागांधी ने मुंशी को हिन्दी के प्रचार-कार्य में खींचा था। उन्हीं के निर्देश से मुंशी ने प्रेमचन्द के साथ बम्बई से प्रतिष्ठित हिन्दी-मासिक 'हंस' का प्रारंभ किया था। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य था हिन्दी को अखिल भारतीय एवं अन्त: प्रान्तीय रूप देना। इसमें प्रत्येक भाषा का साहित्य हिन्दी एवं नागरी लिपि में प्रकाशित करने का आयोजन सन्निहित था। डॉ0 अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ में संकलित ***'हिन्दी और गुजराती साहित्य विनिमय'*** नामक अपने लेख में प्रभाकर माचवे ने इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि अन्तर्भारतीय-साहित्य की पत्रिका 'हंस' पर सम्पादक के नाते कन्हैयालाल मा. मुंशी और प्रेमचन्द के नाम साथ-साथ छपते थे। माचवे जी का कहना है कि कन्हैयालाल मुंशी के प्रभाव से ही प्रेमचंद के नाम के आगे भी मुंशी शब्द जुड़ गया था।

हिन्दी के प्रति उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर ही अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन ने मुंशी को सन् 1953 में होने वाले वार्षिक अधिवेशन का अध्यक्ष चुना था। इस अवसर पर हिन्दी के इतिहास और उसकी स्थिति के विषय में उन्होंने कहा था कि ***''राष्ट्रभाषा हिन्दी एकमात्र संयुक्त-प्रान्त की स्वभाष नहीं है, यह राजस्थान की भी है। हिन्दी को यदि राष्ट्रभाषा बनना है तो राष्ट्र की अन्य भाषाओं की शक्ति और सौन्दर्य इसमें लाना होगा। 'हिंदी हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की भारती के रूप में ग्रहण की जानी चाहिये।''***

उन्होंने अपने ***'हिन्दी और हिन्दी का भविष्य'*** शीर्षक लेख में हिंदी का समर्थन इन शब्दों में किया है- ***''हमें यह भी नहीं सोचना चाहिये कि हम हिन्दी को केवल व्यवहार मात्र या शासन की भाषा बनाना चाहते है। हमको तो इंग्लैन्ड की अंग्रेजी भाषा है और फ्रांस की फ्रेंच भाषा है, उसी तरह हिन्दी को भारत की भारती बनाना है।''***

भारतीय संविधान में हिन्दी को स्थान मिला, उसमें भी कन्हैयालाल मुंशी का बड़ा हाथ था। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर स्वयं कांग्रेस पार्टी में विभिन्न विचार वाले व्यक्ति

थे, जिनमें हिंदी के कट्टर समर्थकों से लेकर इसके घोर विरोधी तक सम्मिलित थे। वह श्रेय मुंशी और उनके कुछ मित्रों को है कि उन्होंने समझौते का ऐसा सूत्र निकाला जिस पर सब कांग्रेसी ही नहीं बल्कि दूसरे सदस्य भी सहमत हो सके और इस तरह हिन्दी को सर्व सम्मति से राष्ट्र भाषा का स्थान देने की व्यवस्था दी जा सकी। आगरा में 'कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी हिन्दी विद्यापीठ' (के0एम0 इन्स्टीट्यूट) तथा बम्बई में 'भारतीय विद्या भवन' नाम की दो बड़ी संस्थाओं की स्थापना की गई, वह भारतीय अस्मिता की और राष्ट्रीय एकता की संस्थापना में मुंशी जी ने सन्निष्ठ योगदान के ऐतिहासिक स्मारक हैं।

डॉ0 रमण लाल पाठक ने अपने एक आलेख में गुजरात में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को रेखांकित करते हुए इसके समग्र प्रभाव क्षेत्रों पर अपने विचार व्यक्त किये है-

''भारतवर्ष में गुजरात एकमात्र ऐसा प्रदेश है जहाँ हिन्दी और गुजराती दोनों साथ-साथ समानरूप से राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हैं। यह एक ऐसा प्रदेश है जिसमें आज से 80 वर्ष पूर्व सन् 1910-11 में महाराजा सयाजीराव ने प्राथमिक शिक्षा की पाँचवीं कक्षा से हिन्दी को एक अनिवार्य विषय के रूप में स्थान दिलाया था। गुजरात राज्य की प्राथमिक पाठशाला की छठी कक्षा से लेकर माध्यमिक पाठशाला की नौवीं कक्षा तक हिन्दी एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

यहाँ के विश्वविद्यालय में स्नातक और अनुस्नातक कक्षाओं में मुख्य विषय के रूप में हिन्दी पढ़ने वाले अहिन्दीभाषी विद्यार्थियों को प्राप्त-अंकों के आधार पर अच्छा प्रतिशत प्राप्त करने पर भारत सरकार की ओर से मासिक शिष्य वृत्तियां भी प्रदान की जाती हैं।

गुजरात के विश्वविद्यालयों में सम्पन्न शोध-खोज के परिणाम-स्वरूप यह तथ्य उभर कर सामने आया है कि इस प्रदेश में हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार, अध्ययन एवं अनुशीलन अन्य अहिन्दीभाषी प्रदेशों से तो है ही, हिन्दीभाषी प्रदेशों की तुलना में भी यह नगण्य नहीं है।

गुजरात में आठ विश्वविद्यालय हैं। उनमें गुजरात विद्यापीठ का स्थान विशिष्ट है। इस राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना महात्मा गाँधी ने सन् 1920 ई0 में की थी। भारत में यह पहला विश्वविद्यालय है जिसमें आज से 70 वर्ष पहले हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य विषय के रूप में होने लगा था। यहाँ स्नातक कक्षा तक हिन्दी का पाठ्यक्रम एक अनिवार्य विषय के रूप में आज भी बरकरार है। यहाँ क्रमशः 1965 और 1971 में अनुस्नातक शिक्षण एवं शोध-निर्देशन की व्यवस्था की गई थी। यहाँ एम0ए0 (पारंगत), पीएच.डी.

(विद्यावाचस्पति) के अतिरिक्त एम.फिल. (अनु-पारंगत) की उपाधि भी प्रदान की जाती है।

सन् 1949 तक बम्बई विश्वविद्यालय ही गुजरात प्रदेश का एक मात्र विश्वविद्यालय था। 1949 में एक विश्वविद्यालय के रूप में महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की बड़ौदा में स्थापना की गई। प्रारंभ से ही विश्वविद्यालय के कला संकाय के बी.ए. प्रथमवर्ष में हिन्दी एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। सन् 1958 में यहाँ जिस शोध-निदर्शन कार्य का प्रारंभ हुआ उसमें आजतक करीब 90 से भी अधिक विद्यार्थियों ने विविध विषयों पर शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर हिन्दी में पी-एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। विश्वविद्यालय में प्रारम्भ से ही गुजरात में निर्मित हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीय एकान्विति तथा हिन्दी भाषा की सार्वदेशिक व्याप्ति का महत्वपूर्ण साक्ष्य समझा जाता रहा है। और यही कारण है कि यहाँ क्षेत्रीयशोध कार्य एवं हिन्दी-गुजराती के तुलनात्मक शोध-कार्यों की संख्या अधिक रही है। क्षेत्रीय विषयों पर सम्पन्न शोधकार्यों में गुजरात की हिन्दी काव्य-परम्परा, और आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई/गुजरात के संतों की हिन्दी कविता/संतकवि अखा की जीवनी और हिन्दी-कृतित्व/ महेरामणसिंह कृत प्रवीणसागर/ महाराव लखपत जससिंधु का अनुशीलन/ गुजरात की संत काव्य परम्परा और करुणासागर आदि शोधकार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। तुलनात्मक विषयों में सूरदास और नरसिंह महेता / हिंदी एवं गुजराती के भ्रमरगीत काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, कबीर और अखा की विचार धारा, हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास/ स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी और गुजराती उपन्यास/ जयशंकर प्रसाद और न्हानालाल का काव्य/ साठोत्तरी हिंदी और गुजराती कहानियों में नारी जीवन आदि शोध -प्रबधों पर उपाधियाँ दी जा चुकी हैं। शोध-निर्देशन के अतिरिक्त विभाग में शोध हेतु रिसर्च-प्रोजैक्ट भी कार्यान्वित किये गए हैं। विभाग के प्रथम शोध-निर्देशक आचार्य कुंवरप्रताप सिंह की क्षेत्रीय साहित्य में गहरी रुचि थी। उन्होंने गुजरात के हिन्दी कवियों की रचनाओं के संग्रह-संपादन का प्रोजेक्ट सन् 1958 में प्रारंभ किया था। जिसके अन्तर्गत अक्षयरस/ श्रवणाख्यान/ ब्रजभाषा पाठशाला/गोविन्द विलास नाटक/ बिहारी के कवित्त आदि महत्वपूर्ण शोध-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। विभाग के सहयोगियों के द्वारा लगभग एक दर्जन से भी अधिक शोध-प्रोजेक्ट पूरे हो चुके हैं। विभाग की ओर से 'गुजरात में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी पोथियों का विवरणात्मक सूचीपत्र' का विशेष शोधकार्य कार्यान्वित है।

गुजरात युनीवर्सिटी अहमदाबाद की स्थापना सन् 1950 ई0 में हुई थी। इसमें हिन्दी विभाग और हिन्दी शोध का विधिवत प्रारंभ सन् 1962 से हुआ। तब से लेकर आज तक 50 से भी अधिक शोधार्थी पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। इस विश्वविद्यालय

में पिछले कुछ वर्षो से एम.ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के सप्तम प्रश्नपत्र में लघु-शोध प्रबंध प्रस्तुत करने की वैकल्पिक व्यवस्था की गई है। यहाँ पीएच.डी. के अतिरिक्त हिन्दी में एम.फिल. प्रदान की जाती है। यहाँ क्षेत्रीय विषयों पर किये गए शोध कार्यो में प्रणामी सम्प्रदाय और प्राणनाथ/मीर काव्य परम्परा और मीरमुराद/कविवर कृष्णदास और उनका काव्य/गुजरात की वैष्णव काव्य परम्परा और दयाराम, गुजरात के जैन कवियों की हिन्दी कविता/ गुजरात के रामानन्द सम्प्रदाय के कवि/कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला/गुजरात का चारणी साहित्य आदि प्रमुख हैं। तुलनात्मक विषयों में राजस्थानी गुजराती लोकगीतों/ हिन्दी गुजराती के एकांकी/ हिन्दी और गुजराती कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन आदि प्रमुख हैं।

सन् 1955 में सरदार पटेल वि. वि. की स्थापना वल्लभ विद्यानगर में की गई। इस विश्वविद्यालय में भी महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की तरह उसके प्रारंभिक वर्षो में कला संकाय के अतिरिक्त विज्ञान, वाणिज्य आदि संकायों में भी हिन्दी एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती थी। अनुस्नातक कक्षा के अनन्तर पीएच.डी. के लिए भी शोध-निर्देशन प्रदान किया जाता है। यहाँ से करीब साठ से भी अधिक शोधार्थी पीएच. डी. प्राप्त कर चुके हैं। यहाँ भाषा विज्ञान, नाटक, फंक्स्नल आदि पर विशेष रूप से कार्य किया जाता है। गुजरात के वि. वि. में सरदार पटेल वि. वि. ही एक ऐसा विश्वविद्यालय है जो भारत सरकार के यूजीसी के विशेष अनुग्रह के प्राविधान के अन्तर्गत अनेक बड़ी-बड़ी योजनाओं से लाभान्वित है। यहाँ किये गए क्षेत्रीय शोधकार्य के अन्तर्गत गुजरात के हिन्दी कवि दयाराम/गुजरात के स्वामी नारायण सम्प्रदाय का हिंदी साहित्य और मुक्तानन्द स्वामी, तथा तुलनात्मक शोधकार्यो में हिन्दी गुजराती की राष्ट्रीय कविता/ गुजरात और राजस्थान के संतकवि/हिंदी और गुजराती की नई कविता/ हिंदी गुजराती की प्रगतिवादी कविता/ हिन्दी और गुजराती की नई कविता/ हिंदी गुजराती की प्रगतिवादी कविता/ पश्चिमी भोजपुरी और गुजराती की क्रियाएँ/आधुनिक हिंदी गुजराती कविता में प्रकृति वर्णन/ हिंदी गुजराती लोकोक्तियाँ और मुहावरे आदि प्रमुख हैं।

सन् 1966 में गुजरात युनिवर्सिटी में से ही अलग होकर दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी सूरत, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी राजकोट बनी। सन् 1978 में भावनगर युनिवर्सिटी तथा तत्पश्चात पाटण में उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी की स्थापना की गई। इन चारों विश्वविद्यालयों में अपने स्वतंत्र रूप से हिंदी-विभाग अभी नहीं बन पाए हैं। अत: स्थानीय कालेजों के मान्य केन्द्रों पर हिन्दी अनुस्नातक शिक्षण एवं शोध-निर्देशन का कार्य किया जा रहा है। निकट भविष्य

में इन सभी के पूरे विकास की संभावना है।

गुजरात में एम.ए. के पश्चात एम.फिल. के लिए जो ललक बढ़ रही है, उसका एक कारण यह भी है कि यूजीसी ने हिंदी व्याख्याता पद के लिए एम. फिल. को आवश्यक उपाधि के रूप में स्वीकृति दे दी है। लेकिन इसका असर विश्वविद्यालयों में पीएच.डी. के लिए किए जाने वाले शोधकार्यों की संख्या पर विशेष नहीं हुआ है। यहाँ के विश्वविद्यालयों में दोनों कोर्स समान रूप से साथ-साथ हो रहे हैं।

गुजरात में एस.एन.डी.टी. वीमेन्स युनिवर्सिटी के कॉलेजों में भी स्नातक एवं अनुस्नातक तक हिंदी अध्यापन की व्यवस्था है। इन्दिरा गांधी ओपन युनिवर्सिटी में भी हिन्दी अध्यापन की व्यवस्था है। गुजरात विद्यापीठ के अन्तर्गत जो हिन्दी शिक्षण विद्यालय कार्यरत है उनमें वर्षों से हिन्दी माध्यम से बी.एड. की शिक्षा प्रदान की जाती रही है। गुजरात में हिन्दी के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने वाले कई गैर-सरकारी विद्यालय हैं। केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के बच्चों के लिए हिन्दी माध्यम के माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय भी गुजरात के प्राय: सभी बड़े नगरों में कार्यरत हैं। इन सब के अतिरिक्त हिन्दी माध्यम से पत्रकारिता पाठ्यक्रम की भी यहाँ व्यवस्था है।

गुजरात में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में जिन अनेक पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है उनमें विशेष हैं-राष्ट्रवीणा। 'राष्ट्रवीणा' के सम्पादक श्री जेठालालजोशी हैं। प्रस्तुत पत्रिका के अनेक मूल्यवान विशेषांक पिछले पचास वर्षों से प्रकाशित होते रहे हैं। इसके अतिरिक्त गुजरात के विविध अंचलों से सुधाबिन्दु, कर्मपुत्र, उत्तरा, भव्यभारती, नवजीवन आदि पत्र-पत्रिकाएं भी प्रकाशित होते रहे हैं। पिछले कुछ समय से 'हेरल्ड यंग इन्डिया' नामक एक हिन्दी दैनिक भी बड़ौदा, अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

गुजरात में हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन की भी व्यवस्था जिन संस्थाओं की ओर से होती रही है उनमें अहमदाबाद की गुजरात विद्यापीठ, अमृता प्रकाशन, गिरिनार प्रकाशन, हिंदी साहित्य परिषद, पार्श्व प्रकाशन, गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति आदि प्रमुख हैं। संस्थाओं की ओर से स्नातक अनुस्नातक अभ्यास क्रम के लिए पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त स्वतंत्र आलोचनात्मक ग्रंथ और शोध-प्रबंध भी प्रकाशित होते रहे हैं।

गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई, भारतीय हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई आदि संस्थाओं की ओर से मैट्रिक, स्नातक, अनुस्नातक कक्षा के स्तर तक की परीक्षाओं का जो आयोजन होता है उसमें प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में विद्यार्थियों को प्रवेश मिलता है। इन संस्थाओं ने अपनी परीक्षाओं के लिए

स्वतंत्र पाठ्यक्रम निर्धारित कर तदनुरूप पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित की हैं। अन्तर्भारतीपाठावली, सुबोध भारती, हमारी राष्ट्रभाषा, जनता की बोली आदि पाठ्य पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं।

गुजरात में ओएनजीसी, आईपीसीएल, गुजरात रिफाइनरी, पेट्रोफिल्स, जीएनएफसी, पोस्ट एण्ड टेलीग्राम, बैंक, आयकर विभाग आदि केन्द्रीय संस्थानों मे राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन की अनेक योजनाएँ कार्यरत हैं। इन संस्थानों में अपने कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशालाएँ, हिन्दी टाइपिंग, हिन्दी की परीक्षाएँ, पत्र का प्रकाशन, निबंध एवं वक्तव्य स्पर्धा, हिंदी शिक्षण एवं मार्ग-दर्शन आदि का प्राविधान किया जाता रहा है। गुजरात के प्रत्येक बड़े नगर में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की स्थापना की गई है। जिसके द्वारा भी सभी केन्द्रीय संस्थानों में हिन्दी शिक्षण कार्य का आयोजन, संचालन एवं मार्ग दर्शन समय समय पर किया जाता है।

यहाँ के सरकारी कार्यालयों में अनुवाद विभाग के अन्तर्गत हिन्दी अनुवादक के पद की योजना की गई है। अनुवाद विभाग की और से अंग्रेजी से हिन्दी में, गुजराती से हिन्दी में, गुजराती से हिन्दी में और हिन्दी से अंग्रेजी, तथा गुजराती में अनुवाद का कार्य और उसमें प्रशिक्षण का आयोजन किया जाता है। अनुवाद विषय की परीक्षाएँ भी देने का प्राविधान है जिसके अन्तर्गत अनुवाद विनीत, अनुवादविशारद आदि उपाधियाँ प्रदान की जाती है। हिन्दी टाइप राइटिंग को भी विशेष प्रोत्साहन मिल रहा है। गुजरात विद्यापीठ ने भी एक स्वतंत्र विषय के रूप में हिन्दी टाइप राइटिंग की व्यवस्था की है। जिसमें दर्जनों विद्यार्थी वर्षों से हिन्दी टाइपराइटिंग में दक्षता प्राप्त करते रहे हैं।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा समिति के अनेक अधिवेशन गुजरात में हो चुके हैं। गुजरात राज्य हिन्दी प्राध्यापक परिषद के नौ अधिवेशन हो चुके हैं। नौवाँ अधिवेशन बड़ौदा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की ओर से आयोजित किया गया था। प्रस्तुत दो दिवसीय सम्मलेन में हिन्दी के मूर्धन्य कवि नरेश मेहता अतिथि विशेष थे। 9वें दशक की हिन्दी कविता विविध आयाम-पर गोष्ठियों का आयोजन किया गया था। गुजरात में महात्मागाँधी पुरस्कार योजना भी 1950 से कार्यान्वित है। इसमें समग्र देश की सभी भाषाओं के समर्थ किसी एक विद्वान को रुपये 1500 की राशि प्रदान कर सम्मानित किया जाता है। इस पुरस्कार योजना के अर्न्तगत पुरस्कृत विद्वानों मे आचार्य क्षितिमोहन सैन (बगांल), वेदमूर्ति पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (वलसाड), बाबूराव विष्णु पराडकर (काशी), आचार्य विनोबा भावे (वर्धा), अनन्तगोपाल शेवडे (नागपुर), रांगेय राघव (आगरा), दादा धर्माधिकारी (वर्धा) आदि मुख्य हैं।

गुजरात में हस्तलिखित पुस्तकों के अनेक भंडार हैं जिसमें सौराष्ट्र युनी0 राजकोट, एल. डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डोलॉजी, बी. जे. प्राच्य मंदिर, लक्ष्मी प्राच्य विद्यामंदिर, जैन ग्रंथागार (पाटण), प्राच्य विद्यामंदिर, वडोदरा आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें हजारों की संख्या में हस्तलिखित पोथियाँ सुरक्षित हैं। कई प्राच्य विद्यामंदिरों की ओर से प्राचीन ग्रंथों की शास्त्रीय वाचनाएँ भी प्रकाशित की गई हैं। बडोदरा वि. वि. की ओर से गुजरात में सुरक्षित हिन्दी की हस्तालिखित पोथियों का सर्वेक्षण किया जा रहा है।

कई वर्षों से नियमित रूप में आकाशवाणी बडोदरा अहमदाबाद से हिन्दी शिक्षण प्रसारण योजना के अन्तर्गत हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रशिक्षण, विशेषताओं एवं लाक्षणिकताओं के सैकड़ों पाठ प्रसारित हो चुके हैं।

गुजरात मात्र भौगोलिक दृष्टि से भी हिन्दी भाषी राज्यों से नहीं जुड़ा है बल्कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की विकास यात्रा में एक महत्वपूर्ण कड़ी की तरह जुड़ी हुई गुर्जरी भाषा का उद्‌गम स्थल भी यही है। गुजरात में मुस्लिमों के आगमन के परिणाम-स्वरूप यहाँ के जनजीवन में जो एक सह अस्तित्व और प्रेम का माहौल विकसित हुआ उसी के परिणाम स्वरूप गुर्जरी भाषा का उद्‌भव यहाँ हुआ। यह गुर्जरी दक्षिणी का पूर्वरूप भी है।

सर्जनात्मक साहित्य की दृष्टि से भी अन्य अहिन्दी भाषा-भाषी राज्यों की तुलना में गुजरात अग्रगण्य हैं। जिन कवियों ने अपने अलग-अलग काव्य-संकलन प्रकाशित किये-कराये हैं, उनमें किशोर काबरा, भगवत शरण अग्रवाल, रामकुमार गुप्त, पारुकान्त देसाई, हसित बूच, मधुमालती चौकसी, शेखआदम आबूबाला, भगवानदास जैन, शेखर जैन, दिव्या रावल, रमाकान्त शर्मा, विष्णुविराट आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी साहित्य परिषद अहमदाबाद की ओर से 'गुजरात का समकालीन हिन्दी काव्य' के अंतर्गत प्रकाशित दो कविता संकलनों में इन सब कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। कथा-साहित्य के अन्तर्गत कहानी लेखन में अब्बासताई, अविनाश श्रीवास्तव, सुदर्शन मजीठिया, जोजफ्‌अनवर आदि की रुचि रही है। उपन्यासकारों में इन्दु वसावडा के भी तीन-चार उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यास प्रेमचन्द्र सम्पादित 'हंस' में प्रकाशित होते थे। प्रेमचन्द जी भी उनके प्रोत्साहक एवं प्रशंसक रहे। अन्य प्रख्यात उपन्यासकारों में अशोकशाह, लक्ष्मी पटेल, विष्णु विराट चतुर्वेदी, रघुवीर चौधरी, इन्दिरा दीवान, सुदर्शन मजीठिया आदि प्रमुख हैं।

नाटक एवं एकांकी लेखन में रजनी कान्त जोशी, गंगाराम शील, बसंतकुमार परिहार, रामचेत वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं।

गुजरात के व्यंग्य कथा लेखकों में सुदर्शन मजीठिया मूर्धन्य हैं। घनश्याम अग्रवाल, भगवानदासकहार, रमणलाल पाठक, विनोद भट्ट आदि की रुचि व्यंग्यप्रधान साहित्य के निर्माण एवं आलोचना में विशेष रही है।

मंचीय काव्यगान के सफल रचनाकारों में विष्णुविराट, अंजना संधीर, किशोर काबरा आदि उल्लेखनीय हैं।

नवगीत, हाइकु, ग़ज़ल, सानेट, प्रबंध-कविताएँ आदि की सर्जना में भी गुजरात के कवियों का अवदान महत्वपूर्ण है।''

प्राचीन काल से ही गुजरात का हिन्दी भाषी प्रदेशों एवं हिन्दी से निकट सम्बन्ध होने के कारण हिंदी का इतना महत्त्व रहा है कि 1 मई 1960 को गुजरात को स्वतन्त्र राज्य का दर्जा दिया जाने के बाद हिन्दी को गुजराती के बाद द्वितीय राज-भाषा के रूप में सहज स्वीकृत कर लिया गया। इस अवस्था में गुजरात के कवियों का हिन्दी में काव्य-रचना करना सहज स्वाभाविक है। ***''गुजराती भाषा के विकसित हो जाने पर भी गुजराती कवियों ने डिंगल, ब्रजभाषा, खड़ीबोली, मारवाड़ी आदि भाषाओं के परम्परागत मोह को नहीं छोड़ा''***[1] और वे स्वभाषा के साथ-साथ किसी बाह्य आवश्यकता तथा मौलिक प्रायोजन के अभाव में भी इन भाषाओं में रचना करते रहे।

डॉ0 सुनीति कुमार चैटर्जी के मतानुसार ***''पुरानी पश्चिमी राजस्थानी से गुजराती एवं हिन्दी की स्वतन्त्र सत्ता सोलहवीं शती में कायम हुई।''***[2] इन दोनों भगिनी भाषाओं को अलग हुए 500 वर्षों से अधिक समय भी नही हुआ है। अत: गुजराती और हिन्दी भाषा में साम्यता है। गुजराती और हिन्दी भाषी-साहित्य भाव, विचार और रूप आदि की दृष्टि से समान होने के कारण गुजरात में हिन्दी को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला।

डॉ0 रमण लाल पाठक के अनुसार ***''गुजरात में हिन्दी 12वीं शताब्दी से मिलने लगती है और पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते-आते हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार एवं अनुशीलन अन्य अहिन्दी प्रदेशों की तुलना में तो अधिक है ही पर हिन्दी भाषी प्रदेशों की तुलना में भी नगण्य नहीं है।''***[3]

गुजराती एवं हिन्दी भाषा की इसी अत्यधिक निकटता के कारण ही गुजरात में हिन्दी भाषा का विकास हुआ। सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने ग्रंथ में कहा है, ***''हिन्दी प्रारम्भ से ही एक आंतर भाषा के रूप में विकसित हुई थी।''***[4] डा0 नागर के अनुसार हिन्दी का विकास निम्नलिखित कारणों से हुआ-

"सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, व्यापारिक एवं साहित्यिक कारणों से यह भाषा उत्तरोत्तर समृद्ध एवं व्यापक होती चली गई। एक तो हिन्दी भाषी प्रदेश की निकटवर्ती प्रदेश होने के कारण, दूसरे बल्लभ सम्प्रदाय, स्वामीनारायण सम्प्रदाय, जैनधर्म और संत-मत के व्यापक प्रभाव के कारण और तीसरे गुजरात के मुसलमान बादशाहों और राजपूत राजाओं के हिन्दी-प्रेम के कारण गुजरात के अंचल में हिन्दी को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला था।"[5]

एक अन्य प्रमुख कारण हिन्दी का गुजराती भाषा से पूर्व ही परिपक्व होना भी रहा है। हिन्दी और गुजराती भाषा के पृथक होने से पूर्व ही गुजरात में पुरानी पश्चिमी राजस्थानी भाषा में तथा नरसिंह मेहता (सन् 1411-1480) के समय से शुद्ध ब्रजभाषा में रचित पद मिलते हैं। गुजराती भाषा के अस्तित्व में आने के कहीं पहले गुजरात में अनेक संतों ने धार्मिक यात्राएँ कर अपने धर्म के प्रचार के साथ-साथ ब्रजभाषा का भी प्रचार-प्रसार किया।

विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों ने अपने आध्यात्मिक एवं धार्मिक विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए गुजरात में विभिन्न स्थानों पर बैठकों, गदियों एवं केन्द्रों की स्थापना कर हिन्दी को माध्यम बनाया। शंकराचार्य ने (9वीं शती में) द्वारका में शारदामठ की स्थापना कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। वल्लभ सम्प्रदाय ने वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए गुजरात में ब्रजभाषा पर विशेष बल दिया। सूफी सम्प्रदाय, जैन धर्मावलम्बी, विठ्ठल सम्प्रदाय, स्वामीनारायण सम्प्रदाय, प्रणामी सम्प्रदाय, भाण सम्प्रदाय आदि अनेक सम्प्रदायों ने गुजरात में हिन्दी में काव्य रचनाएँ की।

कई सन्तों शंकराचार्य, नामदेव, कबीर, गुरु नानक देव आदि की द्वारका, गिरनार, शेत्रुंजय, प्रभासपाटण, सोमनाथ आदि गुजरात के अनेक स्थानों की धार्मिक यात्राओं ने हिन्दी का प्रसार-प्रचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

गुजरात के संतों एवं कवियों ने गुजराती में काव्य-सर्जना करने के साथ-साथ हिन्दी भाषा में भी काव्य रचा। प्रादेशिक प्रभावों के कारण, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के कारण 'सधुक्कड़ी भाषा', 'खिचड़ी भाषा', 'साधु भाषा' आदि नामों से इस भाषा को सम्बोधित किया गया है। *"गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी वस्तुतः किंचित प्रादेशिक वैशिष्ट्य सहित सन्त टकसाली-सधुक्कड़ी हिन्दी है।"*[6]

गुजरात में अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, बहादुरशाह (शासन काल ई0 स.

1526-1537) आदि मुगल बादशाहों, राजा जयसिंह आदि राजपूत शासकों तथा मालवादि के राठोड़, गोहिल, श्रीमाली, चावड़ा, वाघेला, प्रतिहार, चौहाण, चालुक्य, गुप्त आदि विभिन्न वंशीय हिन्दू राजाओं के हिन्दी प्रेम एवं राज्याश्रय तथा संरक्षण दिए जाने के कारण हिन्दी काव्य को फलने-फूलने का अवसर प्राप्त होता रहा। गुजरात के महाराव लखपत सिंह (ई. स. 1710-1760) ने तो कच्छ प्रदेश में ब्रजभाषा काव्य पाठशाला की 1747 में स्थापना की जिसमें हिन्दी काव्य की शिक्षा देकर कवि बनाये जाते थे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- ***''हिन्दी शब्द का प्रयोग हिन्दी साहित्य के विकास में किया गया है। इस शब्द का प्रयोग किसी एक रूप भाषा के लिए ही न होकर एक भाषा परम्परा के लिए ही होता आया है।''***[7]

गुजरात प्रारंभ से ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और पर्यटन का केन्द्र रहा है। यहाँ अनेक तीर्थस्थल तथा दर्शनीय स्थल रहे हैं।

पावागढ़, गिरनार, शेंत्रुंजय, तारंगा, तलाजा, सिद्धपुर, कोबा, महुड़ी आदि अनेक जैन तीर्थस्थल, सोमनाथ का विश्व-प्रसिद्ध शिवमंदिर, अम्बाजी का मंदिर, द्वारका का कृष्ण मन्दिर, अक्षरधाम-स्वामीनारायण मन्दिर आदि अनेक विभिन्न धर्म-संप्रदायों के मंदिर हैं जहाँ भारत-भर से विभिन्न जातियों, धर्मों के तीर्थयात्रियों का आवागमन होता है।

गिरनार का सुदर्शन तालाब, पाटण का सहस्रलिंग तालाब, अड़ालज की बाव (अहमदाबाद से कुछ दूर) तथा सीदी सैयद की जाली, अहमदाबाद, खंभात आदि विभिन्न शहरों की मस्जिदें आदि विभिन्न इमारतें स्थापत्य कला का बेजोड़ उदाहरण हैं जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं।

विभिन्न भाषाभाषी तीर्थयात्रियों एवं पर्यटकों के बीच आदान-प्रदान का माध्यम हिन्दी भाषा द्वारा होता रहा है।

वैष्णव भक्तों का उत्तर भारत और गुजरात के वैष्णव तीर्थों की यात्रा के कारण ब्रज भाषा से घनिष्ठ संबन्ध रहा है। अत: गुजरात का प्रारम्भ से ही हिन्दी से घनिष्ठ सम्बन्ध होने से गुजराती कवियों द्वारा हिन्दी-साहित्य-सृजन करना स्वाभाविक ही है।

गुजरात के हिन्दी-साहित्य के इतिहास के विषय में आधिकारिक रूप से बहुत कम लिखा गया है। डॉ0 भगवत शरण अग्रवाल ने गुजरात के हिंदी-साहित्य के इतिहास के विभिन्न आयामों, पक्षों के शोधपरक अनुशीलन एवं विश्लेषण करने वाले आधुनिक विद्वानों एवं अनुसंधानकर्त्ताओं के नामों का उल्लेख किया है। इनमें श्री के. का. शास्त्री[8], पोपट भाई शंकर भाई[9], डॉ0 हरीश द्विवेदी[10], डॉ0 नंद टी हिंगोराणी[11], डॉ0 भोपाल सिंह राठौड़[12]

डॉ0 आर.एस. प्रजापति[13], प्रो. कमल मेहता[14], डॉ0 अम्बाशंकर नागर[15], डॉ0 जगदीश गुप्त[16], डॉ0 रामकुमार गुप्त[17], डॉ0 भ्रमर लाल जोशी[18], डॉ0 निर्मला आसनाणी[19], देवी सहाय गुप्त[20], डॉ0 अरुणा शुक्ला[21], डॉ0 रमण लाल पाठक[22], डॉ0 मुहब्बत सिंह चौहान[23], डॉ0 के.एम. शाह[24], डॉ0 सुशीला आहूजा[25], डॉ0 नरेश चन्द्र पण्ड्या[26], डॉ0 चन्द्रकांत मेहता[27], डॉ0 हरीश शुक्ल[28], डॉ0 गोवर्धन शर्मा[29], डॉ0 राजन नटराजन[30], डॉ0 नटवरलाल उपाध्याय[31], डॉ0 मदन गोपाल जानी[32], डॉ0 कंचन लाल ब्रह्म भट्ट[33], डॉ0 कुंज बिहारी वार्ष्णेय[34] आदि के अतिरिक्त डॉ0 श्री राम नागर, डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय, डॉ0 किशोर काबरा, डॉ0 विष्णु विराट चतुर्वेदी, डॉ0 दयाशंकर शुक्ल, डॉ0 नवनीत गोस्वामी, डॉ0 महावीर सिंह चौहान, डॉ0 एन.पी.सिंह, डॉ0 सोमा भाई शर्मा, डॉ0 भूपतिराम सांकरिया, डॉ0 शशिबाला अरोरा, डॉ0 मदन गोपाल गुप्त, डॉ0 मालारविन्दम्, डॉ0 रानू मुखर्जी, डॉ0 शैलजा भारद्वाज, डॉ0 सुदर्शन मजीठिया, सुन्दरलाल कथूरिया, द्वारका प्रसाद साँचीहर, बादाम सिंह रावत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुजरात में हिन्दी काव्यधारा का प्रारम्भ अपभ्रंशकालीन साहित्य के उत्तरोत्तर विकास से होता है। गुजरात में 11वीं शताब्दी से जैन धर्म का अत्याधिक प्रसार हुआ। इस काल में गुजरात का अपभ्रंशकालीन साहित्य अधिकांशत: जैन कवियों द्वारा रचित है। जैन धर्मावलम्बियों ने अपभ्रंश प्राचीन हिन्दी तथा प्राचीन गुजराती में अनेक रचनाएँ की हैं। 12वीं शती से पहले गुजरात में हिन्दी-साहित्य के लिखित प्रमाणों का सर्वथा अभाव रहा है। यहाँ का मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य 13वीं शती से ही उपलब्ध हो पाता है। डॉ0 भगवतशरण अग्रवाल इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए कहते है-

''गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि में उसके बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दियों में विकसित हो रहे काव्य पल्लवों को देखा जा सकता है।''[35] प्रारम्भिक काल में गुजराती साहित्यकारों ने इस काल को चारणकाल या रासोकाल कहा। जिस प्रकार हिन्दी में रासो साहित्य अर्थात् 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो' आदि वीररस प्रधान काव्य लिखे गये उसी प्रकार प्राचीन गुजराती हिन्दी साहित्य के आरम्भ में 'भरतेश्वर बाहुबलिरास', ' रेवंतगिरि रासु', 'रणमल्ल छन्द' जैसे ही वीर रस प्रधान काव्य रचे गए अर्थात् हिन्दी और गुजराती साहित्य का विकास प्रारम्भ से आज तक समानान्तर रूप से ही हुआ है। गुजरात में अनेक जैन धर्माश्रयों, ग्रंथालयों एवं देवासरों में सहस्रों जैन साहित्य की पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

ई. सन 5वीं शताब्दी से गुजरात की साहित्यिक भाषा अपभ्रंश थी। लगभग 12वीं

शताब्दी से नरसिंह महेता तक के समय में हिन्दी भाषा की सतत् उन्नति होती रही। उद्योतन सूरि (सं. 779 ई0) कृत 'कुवलय माला', धनपाल कृत 'भविस्सत्त कहा' या 'पञ्चमी कहा' (हेमचन्द्र से 200 वर्ष पूर्व) आदि अनेक अपभ्रंश कृतियों का निर्माण हेमचन्द्र से पहले तक होता रहा।

गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी के महाराज सिद्धराज जयसिंह एवं कुमार पाल के राजगुरु हेमचन्द्रचार्य उच्च कोटि के जैन साधु थे। इन्होंने अपनी विद्वता एवं तपश्चर्या के प्रभाव से जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया। प्रसिद्ध व्याकरणकार एवं जैनाचार्य हेमचन्द्र जी ने अपभ्रंश एवं प्राकृत भाषा के लक्षण सूत्रों को दर्शाते हुए 'सिद्धहेमव्याकरण' की रचना की जो भाषा के उद्भव को दर्शाते विपुल उदाहरण प्राप्त कराती है। अत: हिंदी साहित्य-सृजन-परम्परा का सूत्रपात पाटन-निवासी हेमचन्द्रचार्य के 'सिद्ध हेम' से स्वीकार करना चाहिए।

हेमचन्द्र के व्याकरण में उद्धृत रचनाएँ उस समय के साहित्य, जो पौराणिक, धार्मिक, उपदेशात्मक, वीर तथा शृंगारी भाव से युक्त था, के रूप का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। कुछ उदाहरण देखिए-

''पाइ विलग्गि अंत्रडी, सिरु लहसिउं खन्धस्सु।
तो वि कटारइ हत्थडउ, बलि किज्जउं कन्तस्सु।।''(36)

और

''नीविउ कासु न वल्लहंड, धणु पुणे कासु न इट्ठु।
दोण्णि वि अवसर निवडिअइं, तिण भर गणड् विसिट्ठु।।''

इसमें सरल और सुन्दर भाषा का प्रयोग हुआ है।

हेमचन्द्रचार्य (1088-1232) द्वारा रचित *'सिद्ध हेम'* में उनके पूर्व काल के ऐसे अनेक दोहे मिलते हैं जिनमें खड़ीबोली और ब्रज-दोनों के पुराने रूप मिलते है। उनके व्याकरण में संग्रहित अनेक देशी शब्द जैसे- कुम्भार, गदडो, दुवार, नाव, पराई, झाड, चोटी, फागु, खंभ, पिआस, रससी, संझा आदि खडी बोली और ब्रज के प्रारंभिक रूपों को सूचित करते हैं। कुछ दोहों में ब्रज के प्रारंभिक रूपों का सूचित करते है। कुछ दोहों में राजस्थानी और खड़ी बोली की प्रारंभिक प्रवृतियों की सूचना देने वाले भाषा तत्त्वों की प्रचुरता है तो कुछ ब्रज भाषा की ओर राजस्थानी प्रभाव के कारण उ, ड, ण आदि की अधिकता मिलती हैं, खड़ी बोली के रूप भूतकाल की क्रियाओं में आकारान्त होते हैं। यथा-

''भल्ला हुआ जो मारिआ, वहिणि म्हारा कंतु।
लज्जेजंतु बयंसियहु, जइ भग्गा घर एंतु।।''(38)

डॉ0 पाठक के अनुसार *''निम्नलिखित उदाहरण जो वाक्य गठन की दृष्टि से ब्रज के और भी निकट मालूम होते हैं-*

1. अंगहि अंग न मिलिउ,	*1. अंगहि अंग न मिल्यो*
2. पप्पीहा पिउ पिउ भणवि किंतिउ, रुवहि हयास	*2. पपीहा पिउ-पिउ भनि किसी किसी रूवे हतास*
3. हउ किन जुतउं दुहं दिसहिं,	*3. हौं किन जुत्यों दुहु दिसहि*
4. जह ससणेही तो भुवइ जइ, जीवइ विन्नेह	*4. जो ससनेही तो भुवे जो जीवे बिनु नेह*
5. पप्पीहा कह बोल्लिएण निज्झिण वार इवार	*5. पप्पीबा कै बोलिए निर्धूण वारहि वार*
6. साव सलोणी गोरडी नवरंगी किविस गण्ठि	*6. साव सलोणी गोरी नौखी किसके गांठि*

इस प्रकार 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन' की अनेक अर्द्धालियों, पंक्तियों, दोहे आदि भी ब्रज-भाषा से मिलते जुलते है।''[39]

अत: गुजरात में हिन्दी भाषा एवं काव्य-परम्परा के उद्भव के स्पष्ट निर्देशों के कारण आदिकालीन हिन्दी-साहित्य में इस कृति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

गुजरात के जैन कवि शालिभद्रसूरि द्वारा रचित 'भरतेश्वर बाहुबलिरास' की रचना सन् 1184 में की गई जिसमें उपर्युक्त सूचित भाषा-रूपों के क्रमिक विकास के अनेक प्रमाण मिलने के साथ-साथ काव्यत्व का भी अनुभव होता है। 'भरतेश्वर बाहुबलिरास' का मूल्यांकन करने वाले मुनि जिनविजयजी के विचारानुसार यह ग्रंथ हिन्दी जैन रासो परम्परा का आदि काव्य है। डॉ0 दशरथ ओझा और डॉ0 हरीश ने इसे देशी भाषा हिन्दी के प्रथम रासक काव्य के रूप में स्वीकार किया है।

डॉ0 गणपति चन्द्रगुप्त ने गुजरात के मुनि शालिभद्र सूरि को हिन्दी का आदि कवि तथा उनकी प्रस्तुत कृति को हिन्दी का आदि-काव्य माना है। डॉ0 गुप्त के अनुसार-*''हमें यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए कि अब तक ज्ञात एवं उपलब्ध रचनाओं में भरतेश्वर बाहुबलिरास ही हिन्दी का प्राचीनतम काव्य है जिसमें आधार पर उसके रचयिता मुनि शालिभद्र सूरी को हिन्दी का आदि कवि तथा उसके रचनाकाल को हिन्दी साहित्य का वास्तविक आविर्भावकाल माना जाना चाहिए।''*[40]

आचार्य हेमचन्द्र की मृत्यु(सन् 1174)के केवल ग्यारह वर्ष बाद रचित प्रस्तुत कृति 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन' में सूचित पुरानी हिन्दी के अनेक बीजों का विकास दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि डॉ0 हरीश के मतानुसार इसकी भाषा 'सरल पुरानी हिन्दी' है। इसमें अपभ्रंश की 'ण' कार बहुलता कम होती दिखाई देती है। तत्सम एवं तद्भव शब्द-प्रयोग की प्रवृति के अनुरूप द्वित्वयुक्त कुछ शब्द दृष्टिगत होते है। अरबी के 'साबल' तथा देशज के 'जोखिम' आदि शब्द भी मिल जाते हैं।

डॉ0 गुप्त ने इसे हिन्दी-साहित्य का आदि काव्य माना है। इस आधार पर इसे गुजरात में हिन्दी-काव्य-साहित्य परम्परा का आदि काव्य माना जा सकता है।

गुजरात में जैन धर्म के कवियों की अनेक ऐसी रचनाएँ हैं जिनकी कुछ विद्वान राजस्थानी तो कुछ हिन्दी में गणना करते हैं। इनमें हम शारंगधर वसाहत, श्रीधर, शालिभद्रसूरि, विजयसेन सूरि, विनयचन्द्र सूरि आदि को ले सकते हैं।(41) इनकी भाषा प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश मानी गई है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों में भी इनमें से कुछ का उल्लेख मिलता है।

गुजरात में हिन्दी-काव्यधारा के धीरे-धीरे विकसित होने के प्रमाणों का निर्देश 'प्रबन्ध चिन्तामणि' से भी मिलता है।

मेरुतुंगाचार्य प्रणीत 'प्रबन्ध चिन्तामणि' की रचना सन् 1305 में हुई। इस कृति में उदयन के पुत्र तथा सिद्धराज जयसिंह तथा कुमार पाल के मंत्री के रूप में आम्रभट्ट या आम्रदेव का स्पष्ट उल्लेख है जिन्होंने सिद्धराज जयसिंह तथा कुमार पाल की प्रशंसा में छन्द लिखे हैं। जयसिंह की प्रशंसा का छन्द देखिए-

''डरि गइंद डगमगिअ चन्द्र कर मिलिय दिवायर
डल्लिय महि हल्लियहि मेरू जल झंपइ सायर।

o o o

मागाहि हिमगहि मम गहि मगहि मुँच मुछ जयसिंह तुह ॥202॥
-उपदेश तरंगिनी'(42)

इन छन्दों में तत्कालीन विकसमान देशीभाषा के रूप का प्रमाण मिलता है।

डॉ0 नागर के अनुसार *''अपभ्रंशों से निकलती हिन्दी का आदि रूप पाटण-निवासी हेमचन्द्राचार्य-कृत 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' में और वढ़वाण के जैनाचार्य मेरुतुंग की 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के दोहों में देखा जा सकता है। श्रीधर कृत 'रणमल छन्द' (सवत् 1454) और पद्मनाभ-कृत 'कान्हड़दे प्रबन्ध' (संवत् 1512)*

में भाषा का (प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी) स्वरूप और अधिक स्पष्ट हो जाता है। पर जिसे हम अधिकारपूर्वक हिन्दी कह सकें, उस हिन्दी (ब्रजभाषा) के दर्शन हमें सबसे पहले 15वीं शती के गुजराती कवि भालण की रचनाओं में होते हैं।'[43]

'रणमल छन्द' की रचना श्रीधर नामक कवि ने सं0 1454 में की है। यह रचना दोहे और चौपाई छन्दों में लिखित है जिनकी संख्या 70 है। रचना का मुख्य विषय ईडर नरेश रणमल राठौड़ तथा गुजरात के सुलतान मलिक मुफर्रह (शासन काल सन् 1377-1391 ई0) के युद्ध का वर्णन है। ग्रंथ की ओजपूर्ण शब्दावली का एक उदाहरण-

'साहसवसि सरतांण दल, समुहरि जिम चमकंत
तिम रणमल्लह रांण-वसि, मूंछ-सिहरि-फुटकन्त' ॥[44]

डॉ0 पाठक ने 'रणमल छन्द' को काव्यरूप, छन्द-शैली आदि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बताते हुए *'गुजरात के हिन्दी साहित्य के इतिहास'* में लिखा है- *''अनेक जैन रास और फागु काव्यों की भांति उसमें पुरानी राजस्थानी अर्थात् पुरानी हिन्दी से सम्बन्धित विपुल सामग्री उपलब्ध होती है।'*[45]

सोलंकी, चालुक्य वंशीय राजाओं - मूलराज, जयसिंह तथा वाघेला राजाओं के समय में गुजरात में अपभ्रंशोत्तर हिन्दी-साहित्य का काल विकास का स्वर्ण युग था। अंतिम वघेला शासक कर्ण पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण (सन् 1298 में) के साथ मुसलमानी सत्ता का आविर्भाव हुआ। अलाउद्दीन खिलजी की विशाल सेना ने हिन्दू सत्ता को गुजरात से छिन्न-भिन्न कर दिया। गुजरात की स्वतन्त्रता छिन गई और 100 वर्षों तक दिल्ली के सुलतानों ने इस पर राज किया।

तस्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था का सजीव वर्णन 'कान्हड़दे प्रबन्ध में मिलता है। पद्मनाभ कवि ने 'कान्हड़दे प्रबन्ध' (सं0 1512 को पूरा किया) ग्रंथ रचा जिसमें जालोर के चौहान राजा कान्हड़दे का सोमनाथ पर आक्रमण करने को जाते हुए अलाउद्दीन खिलजी के साथ युद्ध का वर्णन है।[46] पद्मनाभ कृत 'कान्हड़दे प्रबन्ध' की भाषा का एक उदाहरण देखिए-

''आगइ रूद्र घणइ कोपानलि दैत्य सवे तइं बाल्या।
तइं पृथ्वी मांहि पुण्य वरताव्या देवलोकि भय राल्या।
तइं बालिउ काम त्रिपुर विध्वंसिउ पवनवेगि जिम तूल।
पद्मनाभ पूछइ सोमइया केयूं करयउं त्रिसूल॥'[47]

कवि ने मुख्यत: चौपाई बन्ध और पवाडु छन्द का प्रयोग किया है। भाषा में

अपभ्रंश के अवशिष्ट रूपों का कहीं पता नहीं है।

'कान्हड़दे प्रबन्ध' रचना में समान रूप से प्राचीन राजस्थानी एवं प्राचीन गुजराती के रूप में परिलक्षित होते है। इस प्रबन्ध-ग्रंथ को राजस्थान और गुजरात के विद्वान अपनी-अपनी भाषा का ग्रंथ मानते हैं।

कवि ने मुख्यत: चौपाई बन्ध और पवाडु छंद का प्रयोग किया है। भाषा में अपभ्रंश के अवशिष्ट रूपों का कहीं पता नहीं है।

'कान्हड़दे प्रबन्ध' रचना में समान रूप से प्राचीन राजस्थानी एवं प्राचीन गुजराती के रूप परिलक्षित होते है। इस प्रबन्ध-ग्रंथ को राजस्थान और गुजरात के विद्वान अपनी अपनी भाषा का ग्रंथ मानते हैं।

डॉ0 रमण लाल पाठक ने मध्यकाल का प्रारम्भ नरसिंह महेता से माना है। नरसिंह महेता की गणना गुजराती साहित्य के आदि भक्त कवियों में होती है। ***बृहत् काव्य दोहन, सन्तवाणी संग्रह*** आदि में नरसी महेता के कुछ हिन्दी पद भी मिलते है।[48] ***'नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह'***[49] तथा ***'मीरा कृत नरसी रो माहेरो'***[50] में विभिन्न स्रोतों से संकलित हिन्दी ब्रजभाषा के पद मिलते है। कृष्णानन्द व्यासदेव रचित - 'रागसागरोद्भव रागमल्यद्रम' नामक हिन्दी-ग्रन्थ में भी सूरदास, तुलसीदास आदि की कविताओं के साथ इनकी कविताऐं संग्रहीत हैं। काव्यभाषा के रूप में ब्रज के क्रमिक विकास की समर्थ कड़ी के रूप में इन पदों का जो ऐतिहासिक महत्त्व है, इसी कारण नरसिंह के 159 पदों का संपादन डॉ0 दशरथ ओझा ने अपने 'रास और रासान्वयी काव्य' के अन्तर्गत किया है।[51] उनमें से 119वां पद 'नरसिंह महेता कृत काव्यसंग्रह' के पृ0 198 पर प्रकाशित है। इस पद की भाषा वैज्ञानिक समीक्षा करते हुए डॉ0 शिवप्रसाद सिंह एवं डॉ0 सी.एन. प्रभात ने उसे शुद्ध ब्रजभाषा के पद के रूप में स्थापित किया है। नरसी महेता की गुजराती रचनाओं में 'हारमाला', 'गोविन्द-गमन', 'शामलदासनो विवाह', 'सुरत संग्राम', 'सुदामा-चरित', 'श्रृंगारमाला' आदि प्रमुख हैं। नरसिंह मेहता के गुजराती के विपुल पदों के साथ शुद्ध ब्रजभाषा के पद भी मिलते है। इन पदों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। नरसिंह महेता के कहे जाने वाले कुछ हिंदी पद यहाँ दृष्टव्य हैं[52]-

''म्हाने पार उतारोजी, थांने निज भक्तन की आन।
हमरे अवगुन नेक न चितवो, अपनो ही करी जान। ॥1॥

o o o

हों तो कुटिल अधम अपराधी, नहिं सुमरियों तेरा नाम।

नरसी के प्रभु अधम उधारन, गावत वेद पुरान।।''

(भ. सु. सा. श्रीमंत संपतराम गायकवाड़, बडौदा द्वारा प्राप्त)

''कहाँ लगाई एती देर, अरे-अरे सावरे॥टेक॥

हौं गुजराती सिव को उपासी, पूजों साँझ सवेर।

o o o

क्या कहिं काज संवारे भक्तन के क्या निट्राने लिये घोर।

नरसी के प्रभु अधम उधारन, राखिये अबकी बेर।।

(संतबानी संग्रह, भाग-2, पृ0 73, बेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग)''

नरसिंह महेता के पदों पर जयदेव के 'गीत गोबिन्द' तथा नामदेव के ''नामा म्हणे, नामा चा स्वामी'' आदि पदान्त छापों की भांति नरसिंह के पदों में ''भणे नरसैयो, नरसिंहचा स्वामी'' की छाप मिलने से 'गीत गोविन्द' और नामदेव असर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नरसी महेता का समय भालण के आसपास का या उससे थोड़ा पहले का माना जाता है।

नरसिंह महेता के पदों की प्रामाणिकता के बारे में विद्वानों में मतभेद एवं अभाव होने से डॉ0 नागर ने भालण से हिन्दी-काव्यधारा का स्पष्ट प्रारंभ माना है। डॉ0 नागर के अनुसार ***''ब्रजभाषा में रचना करने वाले वैष्णव कवियों की परम्परा गुजरात में भालण से प्रारंभ होती है। इस कवि द्वारा रचित गुजराती काव्य 'भागवत दशमस्कन्ध' में पाँच ब्रजभाषा के पद प्राप्त होते है।''***[53]

डॉ0 के0 का0 शास्त्री ने अपने इतिहास ग्रन्थ ***'गुजराती साहित्यनुं रेखा दर्शन'*** के पृष्ठ 85 पर भालण के 5 पदों का उल्लेख किया है। डॉ0 भगवत शरण अग्रवाल ने शास्त्री जी के पाँच पदों के साथ ही, श्री कांटावाला द्वारा उल्लिखित छठे पद का उद्धरण भी दिया है। उन पदों की प्रथम पंक्तियाँ इस प्रकार है[54]-

1. ***"मैया मोहे भावे दहि भात" -212***
2. ***"ब्रज को सुख समरत हौ श्याम" -214***
3. ***"कहो मैया कैसे सुख पाऊ" - 215***
4. ***"अब पढवे को आयो दिन" - 216***
5. ***"सुत में सुनी लोक की बात"-219***

श्री कांटा वाला द्वारा उल्लिखित-

6. ***"कोन तप कीनो री माई नन्दघरूणी" - 72***

भालण-कृत 'द्वितीय नलाख्यान' के अनुसार कवि का उपस्थिति संवत् (अर्थात् सन् 1489 ई0) बहुमान्य है। भालण के इस उपस्थिति संवत् और इन पदों को यदि प्रामाणिक माना जाए तो इस गुजराती कवि को सूरदास से भी पहले ब्रजभाषा में काव्य-रचना करने का गौरव प्राप्त होता है। सभी पद विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। सभी पद भालण द्वारा रचित है। भालण कृत गुजराती एवं ब्रजभाषा के पदों के कथ्य एवं निरूपण पद्धति में अत्याधिक समानता है। कवि ने प्रत्येक पद में अपनी नाम छाप दी है। हालांकि नामछाप 'भालण जन', 'भालण प्रभु रघुनाथ', 'भालण' आदि विविधता पूर्ण हैं। ' भालण प्रभु रघुनाथ' और रामचरित के अनेकों पद लिखने के कारण भालण पर रामभक्ति के प्रचार के लिए भारत परिक्रमण करने वाले स्वामी रामानंद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

भालण द्वारा ब्रजभाषा में रचित निम्न पद में ब्रजस्मृति के कारण कृष्ण की वेदना का निरूपण किया गया है-

''ब्रज को सुख समरत श्याम।
पर्नकुटी सो बिसरत नाहीं न भावत सुन्दर धाम।।
बदीर मात्र नवनीत के कारण उखले बाँधे ते बहु दाम।
चित्त में जु चुभी रही है, चोर-चोर करत हैं नाम।।''[55]

मध्यकाल में भालण के समकालीन वैष्णव कवियों में लक्ष्मीदास, भीम, केशवदास कायस्थ, चंपानेर के बैजू बावरा, पुष्टिमार्ग के अष्टछाप कवियों के प्रसिद्ध कृष्ण दास अधिकारी और कृष्ण की अनन्य उपासिका मीराँबाई के नाम उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त मुकुन्द गुगली, त्रिकमदास, ब्रेहेदेव, भीम (रसिक गीता), चाँडोद निवासी दयाराम, हर्षदास हरखजी मेहता, गिरधर, भगवानदास कायस्थ आदि वैष्णव भक्ति के कवियों ने हिन्दी-काव्यधारा को आगे बढ़ाया है।

गुजरात के मध्यकालीन निर्गुण काव्यधारा के संतों में दादूदयाल, अखा, गोपाल दास, लालदास, प्राणनाथ, देवचन्द्र मेहता, मुकुन्द दास, धीरो, नवरंग स्वामी, मोरार साहब, त्रीकम साहब, भाण साहब, रवि साहब, दीन दरवेश, वस्तोविश्वंभर, देवीदान देथा, निरांत, छोटम, प्रीतमदास, भोजो भगत, मनोहर दास आदि संतों के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानन्द के विपुल परिमाण में हिन्दी काव्य-रचना करने के साथ-साथ भूमानन्द, मंजुकेशानन्द, अविनाशानन्द, निष्कुलानन्द आदि ने भी हिन्दी-काव्य-साहित्य की सेवा की है।

जैन ब्रजभाषा कवियों में सारंगधर वसाहत, श्रीधर, आनन्दघन, यशोविजय,

ज्ञानानन्द, विनय-विजय और किशनदास प्रमुख हैं।

मध्यकालीन गुजराती सूफी सन्तों में शेख अहमद खट्टू, शेख बहाउद्दीन 'बाझन', हजरत कुतबे आलम, हजरत सैयद मुहम्मद जौनपुरी, काजी महमूद दरियायी, शाह अली गामधनी, हजरत खूब मुहम्मद चिश्ती, मल्लिक अमीन आदि उल्लेखनीय हैं जिन्होंने हिन्दी-उर्दू के प्रारम्भिक रूप गूजरी भाषा में काव्य-रचना की।

गुजरात के हिन्दी-सेवी चारण कवियों में-ईसर बारोट, सायां झूला, जसुराम, गोदड मेहड्, हम्मीर रतनू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुजरात में मेहरामण सिंह, राजा अमर सिंह जी, रणमलसिंह जी, मान सिंह जी, महाराव लखपति सिंह, काकरेची ठकुरानी हरिजी रानी, चावड़ी जी, जामसुता प्रतापबाला आदि राजा-महाराजाओं, राजकुमारियों ने भी हिन्दी रचनाएँ की हैं।

इस तरह देखा जा सका है कि गुजरात में हिन्दी-साहित्य-सृजन की परम्परा बहुत प्राचीन तथा समृद्ध है। हिन्दी साहित्य का यहाँ एक उदात्त वातावरण रहा है। स्वतन्त्रता पूर्व यहाँ के राजाओं ने हिन्दी-सृजन को मात्र प्रोत्साहन ही नहीं दिया वरन् उन्होंने स्वयं साहित्य-सृजन करके हिन्दी के प्रति अपने समर्पित प्रेम को व्यक्त किया है। संत-मंहतों के प्रश्रय में यह पल्लवित हुई है, धर्माचार्यों के संरक्षण में यह विकसित हुई है तथा अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों ने इसे पालपोस कर प्रतिष्ठित किया है।

गुजरात के अनेक आचार्य कवियों ने ब्रजभाषा में लक्षण-ग्रंथों की तथा अनेक चरित्र काव्य सम्मत महाकाव्यों की रचनाएँ की हैं। काव्यानुशासन से सम्बन्धित लक्षण काव्य-ग्रंथों की एक प्रतिष्ठित परम्परा यहाँ रही है। कच्छ (भुज) की ब्रजभाषा काव्य-पाठशाला में उच्चस्थ परीक्षाओं के लिए बावनी, खण्डकाव्यों तथा महाकाव्यों की रचनाएँ कराई जाती थी। आचार्य पद प्राप्त करने वाले अध्येता को लक्षण-ग्रंथ लिखना होता था। दरबारी कवि आश्रय दाता की प्रशस्ति में चरित्रकाव्य भी लिखते रहे हैं।

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची

1. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य: अध्ययन एवं अन्वेषण' - डॉ0 नागर, पृ0 75 ।
2. 'Origin and development of the Bengali language' Volume-1 - डॉ0 सुनीति कुमार चैटर्जी, पृ0 9 ।
3. 'गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास' भाग-1 - डॉ0 रमणलाल पाठक।
4. "It grew up as linguafranca in the Polyglot Bazar attached to Delhi Court and was carried every where by the Lieutenants of the Moghal Empire"-Sir George Grierson-'A Linguistic Survery of India' Vol.ix, part-1, P-44.
5. 'गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ' -डॉ0 अम्बाशंकर नागर, पृ0 9 ।
6. 'गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी' -संपा0 डॉ0 नागर एवं डॉ0 पाठक, पृ0 27 ।
7. 'हिन्दी साहित्य' - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
8. 'गुजरात साहित्यनुं रेखादर्शन'
9. 'मध्यकालीन हिन्दी और गुजराती निर्गुण काव्य : तुलनात्मक अध्ययन' ?
10. 'गुजरात के कृष्ण भक्त कवि और उनका ब्रजभाषा काव्य' ?
11. 'हिन्दी साहित्य को कच्छ प्रदेश की देन' ?
12. 'गुजरात का चारणी साहित्य'
13. 'गुजरात में रामानन्द सम्प्रदाय के कवि और उनका काव्य'
14. 'कच्छी संतों की हिन्दी वाणी'
15. 'गुजरात की हिन्दी सेवा'
16. 'हिन्दी और गुजराती कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन'
17. 'गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन'
18. 'सूरदास और नरसी महेता'
19. 'कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला'
20. 'स्वामी नारायण सम्प्रदाय का हिन्दी साहित्य'
21. 'मुक्तानन्द स्वामी का हिन्दी साहित्य'
22. 'गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास'
23. 'मेहरामण सिंह कृत प्रवीण सागर'
24. 'महाराव लखपति सिंह : व्यक्तितत्त्व एवं कृतित्त्व'

25. 'कुँवर कुशल कृत लखपतिजससिंधु'
26. 'प्राणनाथ : सम्प्रदाय एवं साहित्य'
27. 'मीर काव्य परम्परा एवं कवि मीर मुराद'
28. 'गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन'
29. 'गुजरात के सन्त कवियों में सामाजिक संवादिता'
30. 'प्रेमानन्द प्रेमसखी का काव्य'
31. 'गुजरात के कवियों की हिन्दी साहित्य को देन'
32. 'गुजरात में कबीर परम्परा'
33. 'ब्रह्मानन्द : एक अध्ययन'
34. 'हिन्दी गुजराती के ज्ञानाश्रयी धारा के सन्तों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन'
35. 'गुजरात का मध्यकालीन हिन्दी-काव्य' - डॉ0 भगवत शरण अग्रवाल, पृ0 12 ।
36. 'गुजराती साहित्य का इतिहास' - जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दबे, पृ0 40 ।
37. वही, पृ0 40 ।
38. 'पुरानी हिन्दी' - चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पृ0 118 ।
39. 'गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास' - डॉ0 रमण लाल पाठक, पृ0 23-24 ।
40. 'आदिकाल की प्रामाणिक रचनाएँ' - डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त (प्रथम संस्करण) परिशिष्ट 1976, पृ0 256 ।
41. देखिए-'राजस्थानी भाषा और साहित्य' - मोतीलाल मेनारिया ।
42. 'साहित्येतिहास', पृ0 242 पर उद्धृत ।
43. 'हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान' - डॉ0 नागर अभिनन्दन ग्रंथ, पृ0 89-90 ।
44. 'रणमलछन्द' ।
45. 'गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास' - डॉ0 रमण लाल पाठक, प्रथम संस्करण, 1996, पृ0 70-71 ।
46. 'कान्हड़दे प्रबन्ध': प्रारम्भिक वक्तव्य (मुनि जिनविजय), पृ0 5 ।
47. 'गुजराती साहित्य का इतिहास' - जयन्त कृष्ण दबे, पृ0 87 ।
48. 'गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी' -डॉ0 नागर, पृ0 43 ।
49. संपा0 - ईच्छाराम सूर्यराम देसाई ।
50. संपा0 - अगरचन्द नाहटा, जेठालाल त्रिवेदी, प्रका0 राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

51. 'गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास' - डॉ0 पाठक, पृ0 94 ।
52. 'हिन्दी साहित्य को गुजरात के संत कवियों की देन' - डॉ0 रामकुमार गुप्त, पृ0 90 ।
53. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण' - डॉ0 नागर, पृ0 105 ।
54. 'मध्यकालीन गुजरात का हिन्दी-काव्य' -डॉ0 भगवत शरण अग्रवाल, पृ0 17 ।
55. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण' - डॉ0 नागर, पृ0 105 ।